16

सृष्टि प्रलय विचार

ध्यान दें:

सृष्टिविचारप्रसङ्ग में अद्वैतवादियों का प्रधानतत्व अज्ञानतत्व ही होता है। उसके ही नामान्तर अविद्या, माया अव्यक्त तथा अव्याकृत इत्यादि हैं। प्रश्न करते हैं कि अज्ञान किसे कहते हैं। उत्तर देते हुए वेदान्तर सार में कहा गया है की अज्ञान सत् तथा असत् दोनों के द्वारा अनिर्वचनीय, त्रिगुणात्म, ज्ञानविरोधी तथा भावरूप होता है। ईश्वर ही अनिर्वचनीय इस त्रिगुणात्मिक माया को अपने शक्ति से आश्रित करके लीला के द्वारा जगत् बिम्बरचना के लिए प्रवर्तित होता है। ईश्वर के देखने मात्र से ही जगत की सृष्टि होती है यह श्रुति प्रसिद्ध भी है। फिर भी सृष्टि का अद्वैत वेदान्तसम्मत कोई क्रम है, इस प्रकार से जिज्ञासु दार्शनिकों के ज्ञान के लिए वेदान्तियों ने सृष्टिक्रम प्रतिपादित किया है। सृष्टितत्व के विषय में सांख्यों का प्रकृतिमहत्तत्वादिक्रम सुप्रसिद्ध है, न्याय वैशेषिकों का द्वयणुकादि क्रम। इस विषय मे अद्वैतवेदान्तियों का क्या सृष्टि क्रम है तथा कौन सृष्टि के पदार्थ हैं यह विषय जानना चाहिए।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर के आप सक्षम होंगे;

- अद्वैत वेदान्त दर्शन के सृष्टितत्व के विषय में विस्तार से परिचय प्राप्त करने में;
- अद्वैत वेदान्त सम्मत सृष्टिक्रम के विषय में समझ विकसित करने में;
- सृष्टि के क्रम में श्रुतियों का विरोध समझने में;
- आकाश की सृष्टि होती है अथवा नहीं यह समझ विकसित करने में;
- पञ्चीकरण की प्रक्रिया का विस्तार से परिचय करने में;
- प्रलय के विषय में विस्तार से परिचय करने में;

16.1) सृष्टिक्रम:

ब्रह्म से ही जगत् की सृष्टि होती है इस प्रकार का अद्वैत वेदान्त सिद्धान्त है। लेकिन जैसे अन्य दर्शनों में सृष्टि का कोई क्रम है क्या वैसे ही अद्वैत वेदान्त में भी सृष्टि का कोई क्रम है यह विषय जानना चाहिए। वस्तुत: परमेश्वर के देखने मात्र से सृष्टि उत्पन्न होती है, उसमें क्रम का अनुसन्धान नहीं करना

ध्यान दें:

चाहिए। लेकिन बहुत सी श्रुतियों में सृष्टि को साधारण जनों के समझाने के लिए किसी क्रम का आश्रय लिया गया है, और वह क्रम सृष्टि साधारण लोगों के बोध के लिए उपयोगी होती है। इस कारण से अद्वैत वेदान्त में सृष्टि का क्रम विचारा गया है। तैत्तिरीय उपनिषद में आत्मा के स्वरूप का विचार करके सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" इस प्रकार के ब्रह्म के स्वरूप का लक्षण बताकर के उसी ब्रह्म को सृष्टिकारणत्व के रूप में प्रतिपादन करने के लिए सृष्टि का क्रम बताया गया है।

16.1.1) सूक्ष्मभूत

इस प्रकार से अज्ञानोपाहित चैतन्य से अर्थात् ईश्वर से सबसे पहले आकाश की उत्पत्ति होती है। आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल उत्पन्न होता है तथा जल से पृथ्वी उत्पन्न होती है, इस प्रकार से यह पञ्चमहाभूतों का सृष्टि क्रम चलता है। ये पञ्चमहाभूत सबसे पहले सूक्ष्मरूप में उत्पन्न होते हैं तब वे एक-दूसरे के साथ मिलकर के अलग भूत के रूप में भी उत्पन्न हो जाते हैं। तब वे अपञ्चीकृत महाभूत तन्मात्रा के रूप में कहलाते हैं। तब वे व्यवहार योग्य नहीं होते हैं। उनसे पञ्चीकरण प्रक्रिया के द्वारा पञ्चमहाभूत परस्पर मिश्रित हो जाते हैं तथा व्यवहार योग्यता को प्राप्त कर लेते हैं। पञ्चीकरण प्रक्रिया क्या होती है तो कहते हैं की पञ्चमहाभूतों के परस्पर मिलने के द्वारा उनकी स्थूलरूपता अपादान ही पञ्चीकरण प्रक्रिया कहलाती है। उसका आगे विस्तार पूर्वक प्रतिपादन किया जाएगा।

अपञ्चीकृत पञ्चसूक्ष्मभूतों से स्थूलभूत पाँच ज्ञानेन्द्रियां, पाँचकर्मेन्द्रियां, पाँच वायु,बुद्धि तथा मन उत्पन्न होता है। श्रोत्र, चक्षु, जिह्व तथा घ्राण ये पाँच ज्ञानेन्द्रियां होती है। वाक्, पाणि, पाद, पायु तथा उपस्थ ये पाँच कर्मेन्द्रियां होती हैं। प्राण, अपान, समान,व्यान तथा उदान ये पाँच वायु होती है।

16.1.2) ज्ञानेन्द्रियाँ

ज्ञानेन्द्रियाँ आकाशादि के अलग अलग सात्विकाश से क्रम से उत्पन्न होती हैं। जिसमें आकाश के सात्वकांश से श्रोत्र उत्पन्न होते हैं। वायु के सात्विकांश से त्वक् इन्द्रिय उत्पन्न होती हैं। तेज के सात्त्विकांश से चक्षु उत्पन्न होते हैं। जल के सात्विकांश से जिह्वा उत्पन्न होती है। तथा पृथ्वी के सात्विकांश से घ्राण इन्द्रियां उत्पन्न होती है। इस प्रकार से ये क्रम से उत्पन्न होते हैं।

16.1.3) कर्मन्द्रियाँ

कर्मेन्द्रियाएँ भी आकाशादि के अलग-अलग रजांशो के द्वारा उत्पन्न होती है। वो इस प्रकार से है रजोगुण प्रधान आकाश से वाक् की उत्पत्ति होती है। रजोगुण प्रधान वायु से पाणि की उत्पत्ति होती है। रजोगुण प्रधान अग्नि से पाद (पैर) की उत्पत्ति होती है। रजोगुण प्रधान जल से पायु इन्द्रिय की उत्पत्ति होती है तथा रजोगुण प्रधान पृथ्वी से उपस्थेन्द्रिय की उत्पत्ति होती है।

16.1.4) मिलित सूक्ष्मभूतों के कार्य

पाँच वायु पाँच वायु आकाशादि के रजांशों के मिलने से उत्पन्न होते है। क्रिया के भेद होने से ही उनका भेद होता है, वायुत्व की दृष्टि से तो वे समान होते है। वे हैं प्राण, अपान, व्यान, उदान तथा समान इनमें उर्ध्वगमन शील नासाग्रवायु प्राण कहलाती है। अधोगमनशील पायुस्थानीय वायु अपान कहलाती है। सर्वनाडीगमनशील अखिलशरीरस्थायीवायु व्यान कहलाती है। उर्ध्व उत्क्रमणशील कण्ठस्थायी वायु उदान कहलाती है। शरीर के मध्य में गमनशील अन्नरसादि को ले जाने वाली वायु समान कहलाती

ध्यान दें:

है। इसलिए सदानन्दयोगीन्द्र ने वेदान्तसार में कहा है "प्राणो नाम प्राग्गमनवान् नासाग्रवर्ती। अपानो नाम अवाग्गमनवान् पाय्वादिस्थानवर्ती। व्यानो नाम विष्वग्गमनवान् अखिलशरीरवर्ती। उदानो नाम कण्ठस्थानीय: ऊर्द्ध्वगमनवान् उत्क्रमणवायु:। समानो नाम शरीरमध्यगताशीतपीतादिसमीकरणकर:। समीकरणं तु परिपाककरणं रसरुधिरशुक्रपुरीषादिकरणम्" इस प्रकार से

कुछ लोग नाग- कूर्म-कृकल देवदत्त तथा धनञ्जय इस प्रकार की पाँच अन्य वायु होती है इस प्रकार से कहते हैं। वहाँ पर नाग उद्गिरणकारक, कूर्म उन्मीलनकारण, कृकल क्षुत्कारण, देवदत्त जृम्भण कारक, धनञ्जय पोषणकारक होती है। जिसे प्रकार से गोरक्षा शतक में कहा गया है

उद्गारे नाग आख्यात: कूर्मस्तून्मीलने स्मृत:।
कृकलस्तु क्षुधि ज्ञेयो देवदत्तो विजृम्भणे।

इनके प्राणादि के अन्तर्भाव के कारण कुछ लोग इन्हें प्राणादि के अन्तर्गत ही मानते हैं।

अन्त:करणम्

आकाशादि सात्विकांशों के परस्पर मिलने के बाद उनसे अन्त:करण उत्पन्न होते है। अन्त: करण के ही वृत्तिभेद के द्वारा बुद्धि, मन, चित्त तथा अहङ्कार इस प्रकार से चार विभाग होते हैं। इसलिए कहा गया है

आकाशादिगता: पञ्च सात्त्विकांशा: परस्परम्।
मिलित्वैवान्त:करणमभवत् सर्वकारणम्॥
तदन्त:करणं वृत्तिभेदेन स्याच्चतुर्विधम्।
मनो बुद्धिरहङ्कारश्चित्तं चेति तदुच्यते॥ इति।

इनमें मन संकल्पविकल्पात्मिका अन्त:करणवृत्ति होती है। बुद्धि निश्चयात्मिका अन्त: करणवृत्ति होती है। अहङ्कार अभिमानात्मिका अन्त: करणवृत्ति होती है। चित्त स्मरणात्मिका अन्त: करणवृत्ति होती है। इन वृत्तियों में बुद्धि तथा मन की ही प्रसिद्ध है। इसलिए अनेक लोग अहङ्कार तथा चित्त को अलग नहीं मानकर के बुद्धि तथा मन के अन्तर्गत ही मानते है। इसलिए अन्त: करण की द्विरूपता विद्यारण्य स्वामी के द्वारा पञ्चदशी में इस प्रकार से कही गयी है।

तैरन्त:करणं सर्वैर्वृत्तिभेदेन तद् द्विधा।
मनो विमर्शरूपं स्याद् बुद्धि: स्यान्निश्चयात्मिका। इति।

इस श्लोक में मन की विमर्शरूपता भी कही गयी है। विमर्श विशेष रूप से आलोचन विचार को ही कहते हैं। वह विचार यह अथवा इस प्रकार से नहीं जाना जाता है, यह भाव वाला तथा संकल्प तथा विकल्प के द्वारा नहीं जाना जाता है। इसलिए विमर्श सङ्कल्पविकल्पात्मक मन ही होता है।

16.1.5) सूक्ष्मशरीर

पाँच ज्ञानेन्द्रियां, पाँच कर्मेन्द्रियां, पाँच वायु तथा मन इस प्रकार से सत्रह अवयव मिलकर के सूक्ष्मशरीर का निर्माण करते है। इसलिए सत्रह अवयव से युक्त अवयवी सूक्ष्मशरीर कहलाता है। सूक्ष्मशरीर का अपरनाम लिङ्गशरीर है। जिसके द्वारा आत्मा का प्रत्यक्ष सद्भाव जाना जाता है वह लिङ्गशरीर कहलाता है। इसका अर्थ यह है कि सूक्ष्मशरीर के द्वारा जीवात्मा जानी जाती है इस कारण से सूक्ष्मशरीर लिङ्गशरीर कहलाता है। सूक्ष्मशरीर के विषय में विद्यारण्य स्वामी के द्वारा पञ्चदशी में कहा गया है।

ध्यान दें:

बुद्धिकर्मेन्द्रियप्राणपञ्चकैर्मनसा धिया।
शरीरं सप्तदशभिः सूक्ष्मं तल्लिङ्गमुच्यते॥ इति।

संक्षेप में सृष्टिक्रम नीचे दिया जा रहा है

निर्गुणं ब्रह्म

----------(माया/अज्ञानम्)

ईश्वर (सोपाधिक ब्रह्म)

▼

आकाश ▶ वायु ▶ अग्नि ▶ आप ▶ पृथिवी (सूक्ष्मभूत)

----------(पञ्चिकरणम)

▼ ▼ ▼ ▼ ▼ ▼

पाँच ज्ञानेन्द्रियां, पाँच कर्मेन्द्रियां, पाँच स्थूलभूत, पाँच वायु, मन, बुद्धि

पाठगत प्रश्न 16.1

1. पाँच महाभूतों की सृष्टि का प्रतिपादन करने वाली तैत्तिरीय श्रुति कौन-सी है?
2. अज्ञानोपाहितचैतन्य से सबसे पहले कौन-सा भूत उत्पन्न होता है?
3. पाँच ज्ञानेन्द्रियां कौन-कौन सी है?
4. पाँच कर्मेन्द्रियाएं कौन-कौन सी है?
5. पाँच वायु कौन-कौन हैं?
6. ज्ञानेन्द्रियां उत्पन्न होती हैं?
   क) सूक्ष्मभूतों के सात्विकांश से
   ख) सूक्ष्मभूतों के रजांश से
   ग) सूक्ष्मभूतों के तम अंश से
7. कर्मेन्द्रियां उत्पन्न होती हैं?
   क) सूक्ष्मभूतों के सात्विकांश से
   ख) सूक्ष्मभूतों के रजांश से
   ग) सूक्ष्मभूतों के तम अंश से
8. उदान किसे कहते हैं?
9. अन्तः करण किससे उत्पन्न होता है?
   क) सूक्ष्मभूतों के मिलित सात्विकांश से
   ख) सूक्ष्मभूतों के मिलित मिलित रजांश से
   ग) सूक्ष्मभूतों के मिलित तम अंश से

ध्यान दें:

घ) सूक्ष्मभूतों के अलग अलग सात्विकांश से

10. अद्वैत वेदान्त के मत में सूक्ष्मशरीर के कितने अवयव होते हैं?

क) ग्यारह ख) तेरह

ग) सत्रह घ) सोलह

11. सङ्कल्पविकल्पात्मिका अन्त:करण की प्रवृत्ति होती है?

क) मन ख) बुद्धि

ग) चित्त घ) अहङ्कार

12. निश्चयात्मिका अन्त:करण की प्रवृत्ति होती है?

क) मन ख) बुद्धि

ग) चित्त घ) अहङ्कार

13. प्राण किसे कहते हैं?

14. जृम्भणकारण वायु कौन-सी होती है?

16.2) भूतसृष्टिक्रम में विरोध का परिहार तथा आकाश का उत्पत्ति विचार

पञ्चमहाभूत अज्ञानोपाहित चैतन्य से उत्पन्न होते हैं इस प्रकार से पहले भी कहा जा चुका है। लेकिन अभी पञ्चमहाभूतों के बीच में किस की उत्पत्ति सबसे पहले होती है इस विषय में विचार किया जाता है। सबसे पहले आकाश की उत्पत्ति होती है अथवा नहीं यह प्रश्न पूर्वपक्षी के द्वारा सबसे पहले पूछा गया। छान्दोग्योपनिषद् में सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्' (छा. उ. 6.2.1) इस प्रकार से सत् शब्द से वाच्य ब्रह्म प्रकृत्य 'तदैक्षत' 'तत्तेजोऽसृजत' (छा. उ. 6.2.3) इस प्रकार से पञ्चमहाभूतों का मध्यम तेज आदि करके इनकी उत्पत्ति सुनी जाती है। श्रुति का अतीन्द्रियार्थ प्रतिपत्ति में हमारा प्रमाण होता है। छान्दोग्य श्रुति के द्वारा आकाश की उत्पत्ति प्रतिपादित नहीं की गई है, इस प्रकार से आकाश की उत्पत्ति नहीं होती है ऐसा नहीं है। आकाश की उत्पत्ति प्रधान वाक्य श्रुतियों में प्राप्त होते हैं। इसलिए तैत्तिरीय उपनिषद् में कहा गया है।

'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' (2.1.1) इति प्रकृत्य, 'तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाश: सम्भूत:' (2.1.1) इस प्रकार से आत्म के द्वारा आकाश की उत्पत्ति वर्णित है।

इस प्रकार से श्रुतियों में परस्पर विप्रतिषेध पाया जाता है कहीं पर तो तेज प्रमुख सृष्टि मानी गयी है तो कहीं पर आकाश प्रमुख सृष्टि को माना है।

अब प्रश्न करते हैं इस प्रकार से तो श्रुतियों मे विप्रतिषेध प्राप्त होता है, कही पर तो तेज प्रमुख सृष्टि तो कही पर आकाश प्रमुख। इन श्रुतियों की एक वाक्यता होनी चाहिए। और 'तत्तेजोऽसृजत' इस प्रकार से एक बार श्रुत सृष्टा के स्रष्टव्य दो के द्वारा संबंध उचित नहीं है, 'तत्तेजोऽसृजतष्तदाकाशमसृजत' इस प्रकार से। और कहते हैं कि एक श्रुत कर्ता के भी दो कर्तव्य देखे जातें जैसे सूप को पकाकर के ओदन पकाता है, इस प्रकार तब आकाश की सृष्टि करके उसने तेज की सृष्टि करी इस प्रकार योजित कर देगें। लेकिन ऐसा भी नहीं है छान्दोग्य के अनुसार तेज को समझना चाहिए तथा तैत्तरीय के अनुसार पहले आकाश को समझना चाहिए। लेकिन दोनों इस प्रकार पहले समझना भी उचित नहीं है। कही पर

ध्यान दें:

छान्दोग्योपनिषद् में सदाख्याता आत्मा के तेज की सृष्टि बतायी गई है। तैत्तरीयोपनिषद् में तो 'वायोरग्निः' इस प्रकार से वायु को ही तेज के उपादानत्व रूप मे वर्णित है। यहाँ पर भी श्रुतिविरोध दिखाई देता है।

यदि छान्दोग्य श्रुति के अनुसार ही जाना जाए तो आकाश की उत्पत्ति ही नहीं होती है। इसलिए जो आकशोत्पत्तिवादिनी श्रुति है वह गौणत्व के रूप में समझी जानी चाहिए। किस प्रकार से तो कहते हैं कि असम्भव होने से। इस प्रकार से आकाश की उत्पत्ति सम्भव ही नहीं है। नैयायिकों के मत मे तो कारण सामग्री ही कार्य को जन्म देने में समर्थ होती है। कारण सामग्री के अभाव से आकाश की उत्पत्ति भी सम्भव नहीं है। समवाय समवाय निमित्तकारणों से ही सभी की उत्पत्ति होती है। द्रव्य का एकजातीय अनेक द्रव्यों का समवायी कारण होता है। आकाश से एकजातीय अनेकद्रव्य आरम्भक नहीं है, जिसमें समवयीकारण होने पर असमवायीकारण में उसका संयोग होने पर आकाश की उत्पत्ति होती है। समवायी तथा असमवायी कारण के अभाव से तो उसका अनुग्रहप्रवृत्त निमित्तकारण दूरापेत ही आकाश का होत है। और उत्पत्ति मानने वालों के मत में तेज से लेकर के पूर्वोत्तर तथा काल में विशेष सम्भवाना होती है। उत्पत्ति से पहले प्रकाशादि कार्य नहीं होते हैं अपितु बाद में होते हैं। इसलिए आकाश की पूर्वोत्तर काल में सम्भवना नहीं कर सकते। क्या उत्पत्ति से पहले आकाश अच्छिद्र हुआ इस प्रकार से इस समझा जा सकता है। पृथ्वी आदि के वैधर्म्य से तथा विभूत्वादि लक्षण से आकाश की अजत्व सिद्धि होती है। जिससे इस प्रकार से लोक में 'आकाशं कुरु', 'आकाशो जातः' इस प्रकार के गौण प्रयोग होते हैं। जैस घटाकाश,मठाकाश, करकाकाश, गृहाकाश, इस प्रकार से एक ही अकाश जातीय भेद व्यपदेश से गौण होता है उसी प्रकार श्रुति में भी आकाश की उत्पत्ति गौणता के द्वारा देखनी चाहिए। श्रुति भी आकाश का नित्यत्व ही सुनाती है। जिस प्रकार से गौणतया द्रष्टव्या। श्रुतिरपि आकाशस्य नित्यत्वं श्रावयति। तथाहि - ष्वायुश्चान्तरिक्षं चौतदमृतम्ष (बृ. उ. 2.3.3) इति, 'आकाशवत्सर्वगतश्च नित्यः' (शतपथब्राह्मणम् 10. 6.3.2) इस प्रकार से। अमृत के नित्य तथा उत्पत्ति को भी नहीं समझा जा सकता है। इस प्रकार से नहीं है आकाश की उत्पत्ति नहीं होती है। तो सिद्धान्ती कहते हैं कि आकाश की उत्पत्ति होती है।

आकाश की उत्पत्ति को नहीं मानने पर प्रतिज्ञा हानि होती है। आत्मविज्ञान के द्वारा सभी का विज्ञान प्राप्त होता है इस प्रकार से वेदान्त प्रतिज्ञा करता है। जिसको श्रुतियों में इस प्रकार कहा गया है कि 'येनाश्रुतं श्रुतं भवत्यमतं मतमविज्ञातं विज्ञातम्' (छा. उ. 6.1.3) इति, 'आत्मनि खल्वरे दृष्टे श्रुते मते विज्ञाते इदं सर्वं विदितम्' (बृ. उ. 4.5.6) इति, 'कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति' (मु.उ. 1.1.3) इस प्रकार से।

ब्रह्म से यदि आकाश की उत्पत्ति नहीं हो तो ब्रहविज्ञान के द्वारा आकाश का विज्ञान भी नहीं होता। तथा एक विज्ञान के द्वारा सभी विज्ञान को जाना जाता है इस प्रतिज्ञा की भी हानि होती है। छान्दोग्योपनिषद् में कहा गया है कि 'येनाश्रुतं श्रुतं भवति' इस प्रकार से प्रतिज्ञा करने पर मिट्टी आदि दृष्टान्तों के द्वारा कार्य कारण के भेद का प्रतिपादन करने वालों के द्वारा इस प्रतिज्ञा का समर्थन किया जाता है। उसके साधन के लिए ये शब्द है शब्दाः 'सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्' (छा. उ. 6. 2.1) 'तदैक्षत' 'तत्तेजोऽसृजत' (छा. उ. 6.2.3) इस प्रकार से कार्य होने पर ब्रह्म का प्रदर्शन करके अव्यतिरेक को प्रदर्शित करते हैं 'ऐतदात्म्यमिदं सर्वम्' (छा. उ. 6.8.7) यहाँ से लेकर के प्रापठक की समाप्ति तक वह जो आकाश हो वह ब्रह्म का कार्य नहीं होना चाहिए। तथा ब्रह्म को जान जाने पर आकाश को जाना जा सकता है। इस प्रकार से वहाँ पर प्रतीज्ञा होनी होती है, और प्रतिज्ञा हानि के द्वारा वेदो को अप्रमाणित करना भी उचित नहीं है। इस प्रकार से प्रत्येक वेदान्त में वे वे शब्द उन उन दृष्टान्तों के द्वारा उसी की प्रतीज्ञा को ज्ञापित करते हैं 'इदं सर्वं यदयमात्मा' (छा. उ. 2.4.6) 'ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्तात्' (मु. उ. 2. 2.12)

ध्यान दें:

इस प्रकार से अग्नि आदि की तरह ही गगन की उत्पत्ति होती है।

फिर इस प्रकर से कह गया है की- छान्दोग्य उपानिषद् में आकाश की उत्पत्ति के अश्रवण से आकाश की उत्पत्ति नहीं है। तैत्तिरीय उपनिषद् में आकाश की उत्पत्ति दिखाई गई है- 'तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः' (तै. उ. 2.1.1)। अब कहते हैं की भले ही इस उपनिषद् में आकाश की उत्पत्ति दिखाई गई है लेकिन यह तत् 'तत्तेजोऽसृजत' इस श्रुति वाक्य के तो विपरीत है। इस प्रकार से सभी श्रुतियों की एक वाक्यता कभी नहीं हो पायेगी। अब कहते हैं भले ही एक वाक्यता हो जाए लेकिन यहाँ पर तो विरोध ही है। एकबार सुने गये सृष्टा के प्रथम बार मे दो सृजित पदार्थों के साथ सम्बन्ध नहीं हो सकता है। आकाश को सृजित करके तेज की सृष्टि करी यह भी विकल्प नहीं हो सकता क्योंकि यहाँ पर भी बहुत से विरोध हैं। इसलिए एक वाक्य सम्भव नहीं होता तो ऐसा भी नहीं है 'तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः, आकाशाद्वायुः, वायोरग्निः' इस प्रकार से तेज सृष्टि के तैत्तिरीय उपनिषद् में तृतीयरूप में श्रवण से श्रुतियों का एक वाक्यत्व सम्भव हो जाता है। यह तैत्तिरीय श्रुति अन्यथा परिणित करने में असम्भव मानती है, लेकिन छान्दोग्य श्रुति सम्भव मानती है। छान्दोग्य श्रुति के अनुसार तब आकाश तथा वायु की सृष्टि करके, उसने तेज की सृष्टि करी। यह छान्दोग्य श्रुति तेज के जन्म देने में प्रधान नहीं होकर भी श्रुत्यन्तर प्रसिद्ध रूप में आकाश की उत्पत्ति का निवारण कर सकती है। एक ही वाक्य के दो व्यापारों के असम्भव होने से, सृष्टा एक होने पर भी अनेक की सृष्टि करें तो एकवाक्य में अनेक सृष्टि सम्भव होती है। कुछ लोग कहते हैं की एकबार श्रुत सृष्टा का दो सृजित पदार्थों से सम्बन्ध नहीं हो सकता है, इस प्रकार जो यह कहा गया है यह भी सङ्गत नहीं है। श्रुति में ब्रह्म से सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि होती है तथा एक ही सृष्टा से सम्पूर्ण सृष्टि का उपदेश मिलता है। इस प्रकार से आकाश की तथा तेज की ब्रह्म से उत्पन्न होने वाली श्रुति श्रुत्यन्तर विहित तेज प्रमुख उत्पत्तिक्रम का वारण नहीं करती है। और नहीं श्रुत्यन्तरविहित तेज प्रमुख के उत्पत्ति क्रम का वारण करने में योग्य है। और तो 'तत्तेजोऽसृजत' यहाँ पर कोई क्रम वाचक शब्द भी नहीं है अर्थात् क्रम का तो 'वायोरग्निः' (तै. उ. 2.1.1) इस श्रुत्यन्तर प्रसिद्ध क्रम से निवारण हो जाता है। कहीं पर आकाश की प्रथम उत्पत्ति मानने पर आकाश की सृष्टि करके फिर उसने तेज की सृष्टि की यह विकल्प भी सङ्गत है जिससे श्रुतियों का विप्रतिषेध नहीं होता है।

जो यह कहा गया है कि- समानजातीय अनेक कारण द्रव्य आकाश का नहीं है तो ऐसा भी नहीं है। उसके प्रति कहा गया है कि- न तो उसका समानजातीयत्व वाला और न ही भिन्न जातीयत्व वाला नियम है। न तन्तुओं के संयोगों का समानजातीयत्व होता है, तन्तु के द्रव्यत्व से, संयोग के गुणत्व से तथा निमित्तकारणों का भी और तुरी वेमादी का भी समानजातीयत्व नियम नहीं होता है। अगर समवायिकारणविषय को ही समानजातीयत्व के रूप में माने तो वह कारणन्तर विषय होने के कारण वह भी अयुक्त है। सूत्रगोवाल अनेकजातीयों के द्वारा एक रज्जु सृज्यमाना दिखाई देती है, तथा सूत्र उनके द्वारा भी विचित्रकम्बलादियों का निर्माण होता है। अगर द्रव्यत्व सत्व होता है दोनों और भी समान सजातीयत्व होता तो वैसा होने पर सजातीयत्वाभ्युगम सभी के सभी के द्वारा समानजातीयत्व होने से व्यर्थ ही होगा।

अणु मन से आध्यकर्मारम्भ के उपगम के कारण ऐसा भी नियम नहीं है की वह एक अनेकों के द्वारा आरम्भ होता है। एक-एक ही परमाणु मन के आद्य कर्मों का आरम्भ करते हैं। नैयायिकों के द्वार यह भी नहीं माना गया है की वह द्रव्यान्तरों से उत्पन्न होता है। और कहते है कि द्रव्यारम्भ में ही अनेक आरम्भ का नियम है तो परिणामी अभ्युपगम के कारण ऐसा भी नहीं है। यदि नियम हो तो संयोगसचिव द्रव्य द्रव्यान्तर का आरम्भ समझा जाए। वह ही द्रव्य विशेष के समान अवस्थान्तर से आपद्यमान कार्य समझा जाए। वह मृद्बीजादि अङ्कुरादि भाव के कारण कहीं एक परिणित होता है उसी प्रकार क्षीरादि दध्यादि भाव के कारण भी कहीं पर एक परिणित होता है। इसलिए ईश्वर के शासन में

ध्यान दें:

ऐसा नहीं है की अनेक कारण कार्य को जन्म देते हो।

जो भी श्रुति में कहा गया की आकाश का नित्यत्व अभ्युपगम से अमृतत्व की उत्पत्ति नहीं है तो यह भी अयुक्त ही है। सम्पूर्ण सृष्टि में प्रलय के अन्त तक आकाश को ही नित्य माना गया है। प्रलय में तो आकाश का भी नाश होता है। इसलिए परमार्थत: आकाश अनित्यत्व ही होता है। जो-जो उत्पन्न होता है वह सब अनित्य होता है इस नियम से आकाश की भी उत्पत्ति के श्रवण से वह भी अनित्य है। आकाश की सृष्टि श्रुति को गौण भी नहीं समझ सकते है, क्योंकि उसके अभ्युपगम में कारण के अभाव से प्रतिज्ञा की हानि होती है ऐसा पूर्व में बताया भी जा चुका है। इसलिए आकाश की उत्पत्ति होती है यह उपपन्न हो गया है। इस प्रकार से ब्रह्म से आकाश, आकाश से वायु, वायु से तेज,तेज से जल, जल से पृथ्वी, इस प्रकार का सृष्टि का क्रम मानना चाहिए। अगर ये कहें की आत्मा से तेज की उत्पत्ति छान्दोग्योपनिषद् में कही गयी है तथा यहाँ पर तो वायु से तेज की उत्पत्ति कही गयी है यह तो असङ्गत है, तो ऐसा भी नहीं है। सृष्टि के क्रम में सभी जगहों पर आत्मभावापन्न से अनुवृत्ति करना चाहिए, अन्यथा अचेतन से चेतन की उत्पत्ति अपरिहर्तव्या हो जाएगी। उसके द्वारा आत्मभावापन्न वायु से तेज की उत्पत्ति होती है यहाँ पर कुछ भी असमञ्जस नहीं है।

पाठगत प्रश्न 16.2

1. किस उपनिषद में तेज प्रमुखों की सृष्टि प्रतिपादित की गई है?

   क) तैत्तिरीयोपनिषद् में ख) कठोपनिषद् में

   ग) बृहदारण्योकोपनिषद् में घ) छान्दोग्योपनिषद् में

2. किस उपनिषद में आकाश प्रमुख की सृष्टि प्रतिपादित की गई है?

   1. क) तैत्तिरीयोपनिषद् ख) कठोपनिषद्

   ग) बृहदारण्यकोपनिषद् घ) छान्दोग्योपनिषद्

3. अद्वैत सिद्धान्त में आकाश की उत्पत्ति हैं अथवा नहीं?

4. आकाश का नित्यत्व किस प्रकार से सङ्गत होता है?

16.3) पञ्चीकरण

अपञ्चीकृत पाँच सूक्ष्म महाभूत पञ्चीकरण की प्रक्रिया के द्वारा तथा त्रिवृत्करणप्रक्रिया के द्वारा स्थलूता को प्राप्त करके पाँच स्थूलभूत रूप में परिणित होते हैं। उसी से वस्तुत: सम्पूर्ण स्थूलप्रपञ्च की उत्पत्ति होती है। इसलिए सृष्टि विचार के प्रसङ्ग में पञ्चीकरण को भी जानना चाहिए। सृष्टि के क्रम में अनुक्रम से उत्पन्न अपञ्चीकृत सूक्ष्मभूत व्यवहार समर्थ नहीं होते हैं इस कारण से वे ही भूत पञ्चीकृत होते है। यहाँ पर पञ्चीकरण प्रक्रिया का विस्तार दिया जा रहा है।

आकाश, वायु, तेज, जल तथा पृथिवी पाँच स्थूलभूत होते हैं। ये प्रत्येक दो प्रकार से विभाजित होते है। उसके बाद फिर दस भाग को प्राप्त करते हैं। फिर उन दस भागों में प्राथमिक पाँच भागों से प्रत्येक चार भागों में बट जाते है। फिर उन चार भागों का अपना-अपना दूसरा भाग का त्याग करके भागान्तर में संयोजन ही पञ्चीकरण कहलाता है। इसलिए वेदान्तसार कारक ने कहा है की पञ्चीकरण अर्थात् आकाशादि पाँच में एक-एक को दो-दो समान भागों में बाँटकर, उनको दस भागों में प्राथमिक

ध्यान दें:

पाँच भागों को प्रत्येक को चार प्रकार से समान रूप में बाँटकर उनके चार भागों में से अपने अपने दूसरे भाग का आधा भाग त्यागकर भागान्तरों में संयोजन करना चाहिए। इस प्रकार से पञ्चदशी में कहा गया है-

द्विधा विधाय चैकैकं चतुर्धा प्रथमं पुनः।
स्वस्वेतरद्वितीयांशैर्योजनात् पञ्च पञ्च ते॥ इति।
सुरेश्वराचार्यैः पञ्चीकरणं वेशद्येन उच्यते।
पृथिव्यादीनि भूतानि प्रत्येकं विभजेद्द्विधा॥
एकैकं भागमादाय चतुर्धा विभजेत् पुनः।
एकैकं भागमेकस्मिन् भूते संवेशयेत् क्रमात्॥
ततश्चाकाशभूतस्य भागाः पञ्च भवन्ति हि।
वाय्वादिभागाश्चत्वारो वाय्वादिष्वेवमादिशेत्॥
पञ्चीकरणमेतत् स्यादित्याहुस्तत्त्ववेदिनः॥ इति।

वस्तुतः पञ्चीकरण पंचमहाभूतों का परस्पर सम्मिश्रण ही होता है। ईश्वर की इच्छा से भोगायत नाना स्थूल शरीरों की सृष्टि के लिए पञ्चीकरण सम्भव होता है। पञ्चीकरण के कारण सभी भूतों में सभी भूतों के अंश विद्यमान होते हैं। इस प्रकार से कहते हैं की फिर एक ही भूत में आकाशादि का व्यपदेश क्यों किया गया है। तो कहते हैं की जिसमें जिस भूत के अंश अधिक होते हैं,उस भूत में वह उस नाम से कहा जाता है। जिस न्याय में इस प्रकार से कहा गया है, 'वैशेष्यात्तु तद्वादस्तद्वादः' इस प्रकार से। इसका अर्थ यह है कि जिसमें जिसका विशेष अर्थात आधिक्य होता है उसका आश्रय लेकर के व्यपदेश किया होता है। उससे आकाश में उसी के अंश के आधिक्य से आकाश इस प्रकार का व्यवहार सिद्ध होता है। इस प्रकार से अन्यभूतों में भी देखना चाहिए।

पञ्चीकृतभूतों के अंश

पञ्चीकृतभूतानि	आकाशः	वायुः	तेजः	जलम्	पृथिवी
1 आकाशः =	1/2	1/8	1/8	1/8	1/8
1 वायुः = 1/8	1/2	1/8	1/8	1/8	
1 तेजः = 1/8	1/8	1/2	1/8	1/8	
1 जलम् =	1/8	1/8	1/8	1/2	1/8
1 पृथिवी =	1/8	1/8	1/8	1/8	1/2

पञ्चीकरण से स्थूलभूत की उत्पत्ति के अनन्तर आकाश में शब्द अभिव्यञ्जित होता, वायु में शब्द तथा स्पर्श, अग्नि में शब्द, स्पर्श तथा रूप, जल में शब्द स्पर्श रूप तथा रस और पृथ्वी में शब्द स्पर्श रूप रस तथ गन्ध अभिव्यञ्जित होती है। इस पञ्चीकरण के अप्रामाण्य की आशङ्का नहीं करनी चाहिए। इस प्रमाण छान्दोग्य श्रुति में त्रिवित्करण के रूप में प्राप्त होता है। "तासां त्रिवृतं त्रिवृतम् एकैकं करवाणि" इस प्रकार से। इस प्रकार से त्रिवृत् करण से तात्पर्य है तेज का, जल का, तथा पृथ्वी का विशेष नियम के द्वार सम्मिश्रण। पञ्चीकरण के समान ही इनकी प्रक्रिया होती है। यह ही त्रिवृत्करण श्रुति पञ्चीकरण की ज्ञापिका होती है। इसलिए सदानन्दयोगीन्द्र ने वेदान्तसार में कहा है "अस्य अप्रामाण्यं न आशङ्कनीयं त्रिवृत्करणश्रुतेः पञ्चीकरणस्यापि उपलक्षणत्वात्" इति। इसके बाद पञ्चीकरण के बाद व्यवहार योग्य स्थूलभूत उत्पन्न होते है। इन पञ्चीकृत भूतों से चौदह भुवन अथवा लोक उत्पन्न होते है। वो है भूः, भुवः,

ध्यान दें:

स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यम् इस क्रम से ऊपर के सात लोक। इसी प्रकार सात के क्रम से नीचे के लोक होते है अतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल, महातल तथा पाताल इस प्रकार से। न केवल चतुर्दश भुवनों की अपितु इस ब्रह्माण्ड की और ब्रह्माण्ड अन्तर्गत चार प्रकार के स्थूल शरीरों की और अन्नपानादि की उत्पत्ति भी इस पञ्चीकृत महाभूत से होती है। जरायुज, स्वेदज, अण्डज तथा उद्भिज इस प्रकार से यह चार प्रकार के स्थूल शरीर होते हैं। जरायु अर्थात् गर्भ से उत्पन्न होने वाले मनुष्य पशु आदि। अण्डज अर्थात् अण्डे से उत्पन्न होने वाले पक्षी तथा सर्पादि। स्वेदज अर्थात् स्वेद से उत्पन्न होने वाले जू मच्छर आदि तथा मृत्तिका में उत्पन्न होने वाले लता वृक्षादि उद्भिज कहलाते हैं। इस प्रकार से पाँच भूतों की उत्पत्ति होती है। और उनभूतों से भौतिक वस्तुओं की समुत्पत्ति होती है।

16.4) प्रलय विचार

16.4.1) नित्य प्रलयः

प्रलय अर्थात् त्रिलोक का नाश होता है। प्रलय चार प्रकार का होता है। नित्य, प्राकृत, नैमित्तिक तथा आत्यन्तिक। नित्य प्रलय सुषुप्ति होता है। जिस अवस्था में जाकर के सुप्त पुरुष कोई भी कामना नहीं करता है तथा न कोई स्वप्न देखता है वह सुषुप्ति अवस्था कहलाती है। जीव नित्य सुषुप्ति अवस्था में जाते है, इस कारण से सुषुप्ति नित्य प्रलय कहलाती है। उस सुषुप्ति में पुरुष परब्रह्म के साथ ऐकात्म्य को प्राप्त करता है। उसके द्वारा अखिल कार्यों के विनाश को प्राप्त करता है। अब कहते हैं की सुषुप्ति में प्राणस्पन्दन रुकता है इसलिए अखिल कार्य विनाश नहीं होता है तब कहते हैं की अन्तः करण की दो शक्तियाँ होती है ज्ञानशक्ति तथा क्रिया शक्ति। ज्ञानशक्तिविशिष्ट अन्तः करण का सुषुप्ति में नाश हो जाता है। लेकिन क्रिया शक्ति विशिष्ट अन्तः करण का नाश नहीं होता है, इस कारण से प्राण उसी अवस्था में रुकता है इस प्रकार से यह अद्वैतवादियों का मत है। क्रियाशक्ति विशिष्ट अन्तःकरण का तो नाश शरीर के विनाश होने पर होता है। सुषुप्ति में प्राण जागृत होता है इसका श्रुतियों में भी प्रमाण है। यदा सुप्तः न कञ्चन स्वप्नं पश्यति, अथास्मिन् प्राण एव एकधा भवति, अथैनं वाक् सर्वैर्नामभिः सहाप्यति" (कौषितक्युपनिषत्-3/2) इस प्रकार से सुषुप्ति में सत्पम्पन्नत्व से सबकुछ विनाश की और चला जता है यहाँ पर छान्दोग्य श्रुति यह कहती है कि - "सता सौम्य तदा सम्पन्नो भवति स्वमपीतो भवति"(6/8/1) च इस प्रकार से।

16.4.2) प्राकृत प्रलय

प्राकृतप्रलय हिरण्यगर्भ विनाशक निमित्त अखिल कार्यों के नाश होने पर होता है। हिरण्यगर्भ अशेष ब्रह्माण्ड का अधिकारी सबसे पहला जीव है। ब्रह्म के अपरोक्षज्ञान से वह जीवन मुक्त कहलाता है। ब्रह्म का अपरोक्ष ज्ञान होने पर भी उसका प्रारब्ध कर्मवश नाश नहीं होता है। इसलिए वह जीवन्मुक्त कहलाता है। जब उसके प्रारब्धकर्म का अशेषता के कारण नाश होता है तब वह उसकी विदेह मुक्ति होती है। उसके प्रमाण के लिए ये श्रुतियां हैं।

ब्रह्मणा सह ते सर्वे सम्प्राप्ते प्रतिसञ्चरे।
परस्यान्ते कृतात्मनः प्रविशन्ति परं पदम्॥ इति।
प्राकृतप्रलये पुराणवचनं तावत्-
द्विपरार्द्धे त्वतिक्रान्ते ब्रह्मणः परमेष्ठिनः।
तदा प्रकृतयः सप्त कल्प्यन्ते प्रलयाय हि॥
एष प्राकृतिको राजन् प्रलयो यत्र लीयेते॥ इति।

ध्यान दें:

16.4.3) नैमित्तिकप्रलय

कार्यब्रह्म हिरण्यगर्भ के दिवसावसान निमित्तक त्रैलोक्यमात्र का नाश नैमित्तिक प्रलय कहलाता है। चारों युगों की सहस्रावाधि ब्रह्मा का दिन कहा जाता है। नैमित्तिक प्रलय के विषय में यह पुराणवचन प्राप्त होता है।

एष नैमित्तिकः प्रोक्तः प्रलयो यत्र विश्वसृक्।
शेते अनन्तासने नित्यमात्मसात्कृत्य चाखिलम्॥ इति।

16.4.4) आत्यन्तिकप्रलय

ब्रह्म के साक्षात्कार के कारण अशेषमोक्ष ही आत्यन्ति क प्रलय कहलाता है। आत्यन्तिक प्रलय का अपर नाम तुरीय प्रलय है। "सर्वे एकीभवन्ति" यह श्रुति यहाँ पर प्रमाण स्वरूप है। जिस क्रम से भूतों की तथा भौतिकों कि सृष्टि होती है उनका विपरीत क्रम से लय भी होता है। जैस पृथ्वी का जल में लय होता है। जल का तेज में, तेज का वायु में, वायु का आकाश में, आकाश का जीव अहङ्कार में उस जीवाहङ्कार का हिरण्यगर्भाहङ्कार में और उस हिण्यगर्भाहङकार का अविद्या में लय हो जाता है। इसको विष्णुपुराण में इस प्रकार से कहा गया है कि-

जगत्प्रतिष्ठा देवर्षे ! पृथिव्यप्सु प्रलीयते।
तेजस्यापः प्रलीयन्ते तेजो वायौ प्रलीयते॥
वायुश्च लीयते व्योम्नि तच्चाव्यक्ते प्रलीयते।
अव्यक्तं पुरुषे ब्रह्मन् निष्कले संप्रलीयते॥ इति।

जिस प्रकार से सृष्टि होती है प्रलय उसके विपरीत क्रम से होता है। प्रलय में कार्य कारण भाव को प्राप्त करते है। इस प्रकार भोगायतन चार प्रकार के सम्पूर्ण स्थूल शरीर, भोग्यरूप अन्नादि भूः आदि चौदह भुवन तथा ब्रह्माण्ड और सभी कारण ये ही पञ्चीकृत महाभूत मात्र होते हैं। शब्दादि विषय सहित पञ्चीकृतभूत, ज्ञानेन्द्रियां, कर्मेन्द्रियां, सभी वायु, अन्तःकरण तथा सम्पूर्ण जगत् इस कारण रूप अपञ्चीकृतभूतमात्र के स्वरूप होते हैं। इस प्रकार से सत्वादि गुण सहित अपञ्चीकृत भूत तथा इनका कारणभूत अज्ञानोपाहितचैतन्यमात्र होता है। यह अज्ञान अज्ञानोपाहित चैतन्य तथा ईश्वरादि तथा इनका आधारभूत अनुपहित चैतन्यरूप निर्विशेष निर्गुण ब्रह्म मात्र होता है। आत्यन्तिक प्रलय में तो ब्रह्म अपने स्वरूप मात्र में ही विराजते हैं।

पाठगत प्रश्न 16.3

1. पञ्चीकरण किसे कहते हैं?
2. पञ्चीकरण प्रतिपादक पञ्चदशी का श्लोक कौन-सा है?
3. पञ्चीकृत वायु में वायु के कितने अंश होते हैं?
4. चौदह भुवन कौन-कौन से हैं?
5. चार प्रकार के स्थूल शरीर कौन-कौन से हैं?
6. प्रलय कितने प्रकार के होते हैं तथा कौन-कौन से प्रलय होते हैं?
7. नित्य प्रलय किसे कहते हैं?
8. आत्यन्तिक प्रलय किसे कहते हैं?

पाठ-16

सृष्टि प्रलय विचार

ध्यान दें:

पाठ सार

सभी दर्शनों के समान ही अद्वैत वेदान्तियों का सृष्टिक्रम भी जानना चाहिए। अद्वैत वेदान्त के मत में अज्ञानोपाहित चैतन्य से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल तथा जल पृथ्वी उत्पन्न होती है। ये सूक्ष्मभूत व्यवहार समर्थित तथा अपञ्चीकृत भूत भी कहलाते हैं। इन अपञ्चीकृत पांचसूक्ष्मभूतों से पञ्चीकरण की प्रक्रिया के द्वारा पांचस्थूलभूत, पांचज्ञानेन्द्रियां, पांचकर्मेन्द्रियां, पांचवायु, बुद्धि तथा मन उत्पन्न होता है। पञ्चीकरण किसे कहते हैं तो कहते हैं कि पञ्चीकरण एक प्रक्रिया होती है । जिसके द्वारा भूतों के द्वितीय अंश को अन्य चार भूतों के अष्टम अंश के साथ मिलाकर के एक पूर्णव्यवहार योग्य स्थूलभूत का निर्माण होता हैं। ज्ञानेन्द्रियां आकाशादि के अलग-अलग सात्विक अंशों से क्रम से उत्पन्न होती हैं। कर्मेन्द्रियां आकाशादियों के अलग-अलग रजांशों से क्रम से उत्पन्न होती है। पाँच वायु आकाशादियों के रजांशों से मिलकर के उत्पन्न होते है। आकाशादिय के सात्विकांशों से मिलकर के अन्त:करण उत्पन्न होता है। अन्त: करण के ही वृत्तिभेद के द्वारा बुद्धि मन, चित्त, तथा अहङ्कार इस प्रकार से चार विभाग होते है। पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांचकर्मेन्द्रियां, पांच वायु, बुद्धि तथा मन इस प्रकार से सत्रह अवयवों बना हुआ सूक्ष्म शरीर होता है। उसी का अपर नाम लिङ्ग शरीर भी है। भलेही नैयायिकों के दर्शन में आकाश नित्य है फिर भी वेदान्तियों के मत में आकाश ब्रह्म से उत्पन्न होता है अर्थात् अनित्य है। इस प्रकार से अङ्गीकार करना चाहिए। जिस क्रम से अद्वैत वेदान्तियों के द्वारा सृष्टि का प्रतिपादन किया गया है उसी क्रम से उसका प्रलय भी वे अङ्गीकार करते हैं। त्रैलोक्यविनाश प्रलय कहलाता है। और वह नित्य, प्राकृत, नैमित्तिक तथा आत्यन्तिक भेद से चार प्रकार का होता है। इन में ब्रह्म साक्षात्कार के द्वारा अशेष प्रपञ्च का विनाश आत्यन्तिक प्रलय कहलाता है।

आपने क्या सीखा

- अद्वैत वेदान्त में विस्तार से सृष्टितत्त्व को विस्तार से जाना।
- अद्वैत वेदान्त में सृष्टिक्रम को जाना।
- सृष्टिक्रम में श्रुतिणें के विरोध को जाना।
- आकाशादि सृष्टि को जाना।
- पञ्चीकरण प्रक्रिया को विस्तार से जाना।
- प्रलय के विषय में विस्तार से जाना।

पाठान्त प्रश्न

1. सृष्टि के क्रम विषय में एक लघु टिप्पणी लिखिए?
2. सप्तदशावयवविशिष्ट लिङ्गशरीर का परिचय दीजिए?
3. मिलित सूक्ष्मभूतों के कार्यों कों संक्षेप में लिखिए?
4. पञ्चीकरण की प्रक्रिया का विस्तार पूर्वक प्रतिपादन कीजिए?
5. अद्वैतवेदान्त के मत में आकाश उत्पत्ति सम्भव है अथवा नहीं विचार कीजिए?
6. चार प्रकार के प्रलयों का संक्षेप में परिचय दीजिए?

ध्यान दें:

पाठगत प्रश्नों के उत्तर 16.1

1. 'तस्माद्वा एतस्मादात्मनः आकाशः सम्भूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्या ओषधयः। ओषधीभ्योऽन्नम्।' इति।
2. ख) आकाश।
3. श्रोत्र, चक्षु, जह्वा, घ्राण, इस प्रकार से ये पाँच ज्ञानेन्द्रियां हैं।
4. वाक्, पाणि, पाद, पायु तथा उपस्थ ये पाँच कर्मेन्द्रियां कहलाती हैं।
5. प्राण, अपान, समान व्यान तथा उदान ये पाँच वायु होती हैं।
6. क) सूक्ष्मभूतों के सात्विक अंशों से।
7. ख) सूक्ष्मभूतों के रज अंशों से।
8. उदान कण्ठ स्थानीय ऊर्ध्वगमन करने वाली वायु होती है।
9. क) सूक्ष्मभूतों के मिलितसात्त्विकांशो से।
10. ग) सत्रह।
11. क) मन।
12. ख) बुद्धि।

13 प्राण वायु नासाग्रवर्ती होती है।

14. देवदत्त।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर 16.2

1. घ) छान्दोग्योपनिषद् में।
2. क) तैत्तिरीयोपनिषद् में।
3. आकाश की उत्पत्ति होती है।
4. प्रलय पर्यन्त ही आकाश का नित्यत्व साथ में होता है।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर 16.3

1. व्यवहार समर्थ पाँच सूक्ष्मभूतों के परस्पर समिश्रण के द्वारा व्यवहार योग्य स्थूल भूतोत्पत्ति प्रक्रिया ही पञ्चीकरण है।
2. द्विधा विधाय चौकैकं चतुर्द्धा प्रथमं पुनः। स्वस्वेतरद्वितीयांशैर्योजनात् पञ्च पञ्च ते इति।
3. 1/2
4. भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यम् इति सप्त ऊर्द्ध्वलोकाः, अतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल, महातल तथा पाताल इस प्रकार से सात अधोलोक होते हैं।

ध्यान दें:

5. जरायुज, स्वेदज, अण्डज, उद्भिज्ज इस प्रकार से चार प्रकार के स्थूल शरीर होते हैं।
6. प्रलय चार प्रकार के होते हैं। नित्य, प्राकृत, नैमित्तिक तथा आत्यन्तिक
7. नित्यप्रलय सुषुप्ति होती है।
8. ब्रह्मसाक्षात्कार के कारण से अशेष मोक्ष ही आत्यन्तिक प्रलय कहलाता है।